बालक, अभिभावक, शिक्षक और परिवेश

❑ करोरी सिंह एवं प्रभा सिंह

अनुवाद : प्रमोद

हमने छ: माह पूर्व अपनी बेटी महिमा को एक बालवाड़ी (नर्सरी) स्कूल में भर्ती करवाया । यद्यपि किसी भी संस्था को कुछ साबित करने के लिए छ: माह का समय बहुत कम होता है परन्तु जो मां-बाप अपने बच्चे को विकसित होता व तेजी से सीखता हुआ देखना चाहते हैं उनके लिए काफी होता है ।

तथापि बच्चे की प्रतिभा को पहचानने व उसके प्रदर्शन पर पुनर्विचार करने के लिए माता-पिता व संस्था दोनों के लिए यह समय पर्याप्त है। जैसा हम सब जानते हैं कि इतिहास हमें यह शिक्षा देता है और चेतावनी देता है कि सभ्यताओं का विलोप युद्धों व महायुद्धों के परिणाम स्वरूप नहीं हुआ है अपितु जानने-सीखने के संस्थानों के नाकारा हो जाने के कारण हुआ है । इसलिए प्राय: यह कहा जाता रहा है कि दिमाग अंतिम अस्त्र है और इन्हीं ज्ञानार्जन के संस्थानों में असली व निर्णायक युद्ध लड़े, जीते व हारे जाते रहे हैं। जानने-सीखने के संस्थानों की श्रेणी में बालवाड़ी स्कूल सर्व प्रथम आते हैं क्योंकि ये न केवल बच्चे की बौद्धिक आवश्यकता की पूर्ति करते हैं बल्कि मनोवैज्ञानिक, आत्मिक और कुछ हद तक सामाजिक जरूरत को भी पूरा करते हैं । समग्र रूप में बच्चे का मानवीय अस्तित्व परिवार, समाज और परिवेश से अन्तर्क्रिया का सम्मिलित रूप है । यह बचपन की सामाजीकरण की प्रक्रिया में प्रकट होता है तथा इसकी छाप व्यक्ति के दिलो दिमाग पर ताजिन्दगी रहती है।

परिवार

अमेरिका के कुछ राष्ट्रपतियों के मनोविश्लेषण ने यह उद्घाटित किया है कि अपने बचपन में उनमें से जो अपनी मां के अधिक करीब तथा अधिक प्रभाव में रहे हैं उनका रवैया सौहार्दपूर्ण था, और इसलिए उन्होंने अधिक मानवीय नीतियों का पक्ष लिया तथा लोगों के व्यापक हित व कल्याण में निर्णय लिए । जबकि जो राष्ट्रपति अपने पिता से प्रभावित रहे उन्होंने मानवीय मुद्दों की बजाए राजनीतिक नीति संबंधी मुद्दों को अधिक महत्व दिया । ठीक इसी तरह यह भी पाया कि हिटलर का बचपन पिता की देखरेख में बीता तथा उसकी समाजीकरण की प्रक्रिया पिता के सानिध्य में हुई इसलिए वह क्रूर था । इसलिए हम प्राय: यह प्रयास करते हैं कि हमारी बेटी पर मां बाप दोनों का समान प्रभाव पड़े ।

परिवेश

गत वर्ष 20 फरवरी को मुम्बई की ओबराय होटल के सबसे ऊपरी माले पर एम.टी.वी. और ब्राण्ड इक्विटी यूथ मार्केटिंग फॉरम की एक संगोष्ठी हुई । इसमें उद्योग की बड़ी हस्तियों ने अपने आलेख प्रस्तुत किये तथा बाजार के जाने-माने लोगों द्वारा विमर्श किया गया । यहां भारतीय युवाओं की विश्व दृष्टि के बारे में एक भिन्न संदर्भ में चर्चा हुई । इसका लब्बो-लुबाव यह था कि 90 के दशक के बच्चे (जिन्हें उन्होंने उदारवाद की संतानें संज्ञा दी) अपनी अंतिम घड़ियां गिनता टाइम बम है । आलेख प्रस्तुतियों तथा विमर्श की निर्णायक सहमतियां यह थीं कि हमने इस पीढ़ी (उदारवाद की संतानें) में उपभोग की आकांक्षाएं तो खूब जगा दीं परन्तु इन्हें पूरी करने के अवसर उपलब्ध नहीं करवाए । यदि जल्दी ही हमने कुछ नहीं किया तो सन् 2015 में जब ये उदारवाद की संतानें तरुण होंगी हम एक कुंठित पीढ़ी का युग देखने को अभिशप्त होंगे । जो अपने साथ तमाम तरीके की सामाजिक समस्याएं भी लाएगा। यह वास्तव में हमारे समाज को समय रहते कुछ कदम उठाने की चेतावनी है । ऐसा कुछ घट रहा है जिसमें आकांक्षाएं गुणात्मक रूप में बढ़ रही हैं ।

अध्यापिका/अध्यापक

सामान्यतया बच्चा अपने माता-पिता व अध्यापक/अध्यापिका की नकल करता है । पर अपने अध्यापक/अध्यापिका की समझदारी पर अधिक भरोसा करता है।

दिमाग में इस सामान्य व सैद्धांतिक आधार के रहते हम इस प्रकार की व्यवस्थाएं करने का प्रयास करते हैं कि हमारी बेटी संतुलित रूप में पिता, मां, दादी और चचेरे भाई बहिनों के संसर्ग में रहे । हमने यह देखा कि वह हमारी नकल करती है । लेकिन दृढ़निश्चयी (आत्मविश्वासपूर्ण) वह दूसरे बच्चों से बातचीत करते हुए रहती है । उदाहरण के लिए कभी कभी अपने पड़ौस के बच्चों को मैं स्कूल जाने के लिए कार में बिठा लिया करती हूं और मैंने पाया कि जब वे कार की पिछली सीट पर बैठे होते हैं तो ज्यादा आत्म विश्वास के साथ अपने अध्यापक/अध्यापिका के बारे में बातें कर रहे होते हैं । उनमें से एक बोला ''हमारी मैम तो अच्छा

बच्चा है।'' इसी तरह के ढ़ेरों अन्य उदाहरण हैं जब वे अपने मां-बाप की बजाए अध्यापक/अध्यापिका के बारे में अधिक बतिया रहे होते हैं। यह भी देखा गया है कि जब वे अपने माता पिता व अध्यापक/अध्यापिका की गतिविधियों में असंगति पाते हैं तो वे पूरे दृढ़निश्चय के साथ कहते हैं कि अध्यापक/अध्यापिका सही है ।

महिमा के अवलोकन के बाद हमारे मत में यह छवि बनती है कि बच्चे अध्यापक बालक संबंध की बजाए हमउम्र समूह सिद्धांत के अंतर्गत अधिक सीखते हैं क्योंकि हमउम्र समूह सिद्धांत सहभागिता पूर्वक सीखने तथा सहयोग/सामूहिक प्रयास के सिद्धांतों पर आधारित है तथा यह सिद्ध करता है कि अध्यापक की भूमिका मात्र टीम मैनेजर और रैफरी/अंपायर की तरह होनी चाहिये जो बच्चों को इच्छानुसार प्रोत्साहित करे तथा अनुशासित रखे ।

इस तरह का सिद्धांत कैसे अधिकतम प्रभावी रहे, इस तरह के कुछ अन्य मुद्दे भी विमर्श के लिए रखे जाने चाहिए ।◆

शिक्षा : एक दृष्टिकोण यह भी

❑ **ललित किशोर**

हाल ही में श्री राज किशोर, सम्पादक ''दूसरा शनिवार'' तथा कुछ प्रबुद्ध एवं सरोकारी लोगों से शिक्षा पर कुछ विचार सुनने को मिले। लगा कि शिक्षा इतनी संदिग्ध कभी भी न थी जितनी की वर्तमान में है । स्कूलों की कई परतें बन गई हैं और शिक्षा भी उपभोगवादी व बाजारी हो गई दिखती है । कुल मिलाकर शिक्षा कुण्ठित करने का हथियार बन गई लगती है ।

कुछ उद्धेलित करने तथा कुरेदने वाले विचार निम्नवत् सार रूप में दिये जा रहे हैं जो मुझे सुनने को मिले । पाठक चाहें तो पढ़कर व मनन कर के अपनी प्रतिक्रियाएं भेज सकते हैं ।

- शिक्षा स्वयं एक राष्ट्रीय समस्या बन गई है । अत: शिक्षा के माध्यम से अब कोई समस्या हल नहीं हो सकती ।

- जीवन ही विद्यालय है । औपचारिक स्कूल तो शक्तिशाली लोगों को पनपाने के लिए व उपभोक्ता तैयार करने के लिए हैं ।

- शिक्षा का राज-पोषक व वर्ग-पोषक मॉडल उच्चवर्ग के अधिकार को बनाए रखने के लिए है । शिक्षा उपभोक्तावाद की वाहिका है । शिक्षा यथा - स्थिति का वहन करती है। शिक्षा एकहरी नहीं; द्वंदरहित नहीं है । शिक्षा द्वंद्वों की पोषक है ।

- शिक्षा स्वयं आदर्श तथा यथार्थ की दूरी बनाए रखने का हथियार बन गई है । समाज शिक्षा से चाहता कुछ है और प्रकटत: कुछ और ही सिखाता है ।

- आज के शिक्षक सभी नकारा हो गए हैं । यदि वे वास्तव में शिक्षा देने में सक्षम होते तो अपने बच्चों को स्कूल ही न भेजते।

- दुष्टता का अदृश्य पाठ्यक्रम स्कूलों में चलता है क्योंकि समाज दुष्ट हो गया है और दुष्टता को प्रफुल्लित देखना चाहता है। शिक्षा दुष्टता की वाहक बन गई लगती है ।

- स्कूल में एक बौद्धिक छूआछूत चलती है । पाठों में लिखा रहता है, आपस में बांट कर खाओ, आपस में सहयोग दो और समरस बनो । जब कि बच्चों को अंक दे कर, एक दूसरे से छोटा-बड़ा, अच्छा-बुरा व पास-फेल करार दिया जाता है ।

- शिक्षक स्वयं द्वंद्व के स्रोत हैं ; उनके अपने जीवन में कथनी और करनी की खाईयां है । शिक्षक स्वयं छात्रों के चित्त को खंडित करते हैं ।

- शिक्षा बच्चों की जिज्ञासा को त्वरित नहीं करती अपितु उसे कुंद व नष्ट करती है । स्कूलों में बच्चे सहज खोज का उत्साह खो बैठते हैं ।

- शिक्षा विषमता के नए-नए रास्ते ईजाद कर रही है। कहीं सरकारी स्कूल हैं : कहीं अमीर स्कूल हैं ; कहीं मॉडल स्कूल हैं। शिक्षा खरीद-फरोख्त की वस्तु बन गई है। ताकतवर व भ्रष्ट लोगों ने शिक्षा में विषमताएं खड़ी कर दी है । यह एक नए प्रकार की छुआ-छूत है ।

- अब शिक्षित होने के कोई सामाजिक संदर्भ नहीं हैं । अब तो पढ़ना-लिखना केवल निजी स्वार्थ के लिए होता है । शिक्षा के माध्यम से सामाजिक उन्नति की कीमत पर चंद लोगों का निजी विकास होता है ।

- दरअसल तथाकथित शिक्षित वर्ग ही समस्या समाधान में सबसे बड़ा बाधक है । देश के 20 करोड़ शिक्षित ही वास्तविक समस्या हैं।

- स्कूलों के शौचालयों से लेकर रेलगाड़ी के शौचालयो में लिखे वाक्य स्कूलों द्वारा पैदा की गई विकृतियों के द्योतक हैं ।◆